पञ्चम अभ्यास

कर्मकारक (द्वितीया) 'को'

आज्ञार्थक विधिलिङ्

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र० पु०	पठेत्	पठेताम्	पठेयुः
म० पु०	पठेः	पठेतम्	पठेत
उ० पु०	पठेयम्	पठेव	पठेम

संक्षिप्त रूप

प्र० पु०	(सः)	एत्	(तौ)	एताम्	(ते)	एयुः
म० पु०	(त्वम्)	एः	(युवाम्)	एतम्	(यूयम्)	एत
उ० पु०	(अहम्)	एयम्	(आवाम्)	एव	(वयम्)	एम

इसी प्रकार

भू (भव्)–होना	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः
लिख्––लिखना	लिखेत्	लिखेताम्	लिखेयुः
वद्—कहना	वदेत्	वदेताम्	वदेयुः
हस्—हँसना	हसेत्	हसेताम्	हसेयुः
धाव्—दौड़ना	धावेत्	धावेताम्	धावेयुः
रक्ष्—रक्षा करना	रक्षेत्	रक्षेताम्	रक्षेयुः
क्रीड्—खेलना	क्रीडेत्	क्रीडेताम्	क्रीडेयुः

गम्—जाना	गच्छेत्	गच्छेताम्	गच्छेयुः
आगम्—आना	आगच्छेत्	आगच्छेताम्	आगच्छेयुः
पत्—गिरना	पतेत्	पतेताम्	पतेयुः
नृत्—नाचना	नृत्येत्	नृत्येताम्	नृत्येयुः

इन वाक्यों को ध्यान से देखो—

(१) छात्राः गुरुं नमेयुः (छात्र गुरु को प्रमाण करें)।
(२) शिशुः दुग्धं पिबेत् (बच्चा दूध पीवे)।
(३) सुधाकरः सुधां वर्षेत् (चन्द्रमा अमृत की वर्षा करे।)
(४) नृपः शत्रून् जयेत् (राजा शत्रु को जीते)।
(५) गुरुः शिष्यं प्रश्नं पृच्छेत् (गुरु शिष्य से प्रश्न पूछे)।

कर्मणि द्वितीया ।२।३।२।

जिस वस्तु या पुरुष के ऊपर क्रिया का फल (प्रभाव) पड़ता है उसे कर्म कारक कहते हैं। और कर्म कारक में द्वितीया विभक्ति होती है।

"नृपः शत्रुं जयेत् (राजा शत्रु को जीते।)" इस-वाक्य में 'जीतना' क्रिया का फल 'नृपः (राजा)' कर्त्ता पर समाप्त न होकर 'शत्रु' पर समाप्त हुआ, क्योंकि शत्रु ही जीता जायेगा। अतः 'शत्रु' कर्म कारक हुआ और उसमें द्वितीया विभक्ति (शत्रुम्) हुई। जब क्रिया का व्यापार कर्त्ता पर ही समाप्त होता है, तब क्रिया अकर्मक होती है, जैसे 'बालकः हसति' इस वाक्य में 'हँसने' का व्यापार कर्त्ता तक ही समाप्त हो जाता है' अतः 'हसति' अकर्मक क्रिया का रूप है।

कर्म का उपर्युक्त लक्षण ठीक नहीं, क्योंकि साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिन पर क्रिया का फल तो समाप्त होता है, पर वे कर्म कारक नहीं माने जाते। "वह घर जाता है" यहाँ यद्यपि जाने का कार्य 'घर' पर समाप्त होता है, तथापि 'घर' प्रायः कर्म नहीं माना जाता और न 'जाना' ही सकर्मक क्रिया है। घर को कर्म मानने के लिए विशेष नियम है। पाणिनि के अनुसार कर्म की यह परिभाषा है—"कर्त्ता सब से अधिक जिस पदार्थ को चाहता है वह कर्म है।" (कर्तुरीप्सिततमं कर्म) यथा—पयसा ओदनं भुङ्क्ते (दूध से भात खाता है) यहाँ दूध की अपेक्षा भात कर्त्ता को अधिक पसन्द है।

मुनेः शिष्यं मार्गं पृच्छति (मुनि के शिष्य से रास्ता पूछता है) इस वाक्य में यद्यपि पूछने वाला कर्ता शिष्य की अपेक्षा मुनि से ही रास्ता पूछना अधिक पसन्द करता तथापि मुनि की कर्म संज्ञा नहीं हो सकती, क्योंकि मुनि का 'पृच्छति' क्रिया के साथ कोई सीधा सम्बन्ध न होकर शिष्य के साथ विशेष सम्बन्ध है।

तथायुक्तं चानीप्सितम् ।१।४।५०।

कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं जो कि कर्त्ता द्वारा अनीप्सित होते हुए भी ईप्सित की तरह क्रिया से सम्बद्ध रहते हैं। उनकी भी कर्म संज्ञा होती है, यथा—ओदनं

भुञ्जानो विषं भुंक्ते। इस वाक्य में विष कर्ता को अनीप्सित है, परन्तु ओदन (जो भोजन क्रिया के द्वारा ईप्सिततम है) की 'ही' तरह वह भी उस क्रिया से सटा है और ओदन-भोजन के साथ उसके भोजन का रहना भी अनिवार्य है। इसलिए विष भी कर्म संज्ञक हो जायगा। इसी प्रकार 'ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति' इस वाक्य में तृण भी कर्म संज्ञक होगा।

(अकर्मक धातुभियोंगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम्-वा०) अकर्मक धातुओं के योग में देश, काल, भाव तथा गन्तव्य मार्ग भी कर्म समझे जाते हैं, जैसे—पाञ्चालान् स्वपिति (पाञ्चाब देश में सोता है) (पाञ्चाल देश व्यञ्जक है)।

वर्षमास्ते (वर्ष भर रहता है)। (वर्षम् काल व्यञ्जक है)। गोदोहमास्ते (गाय दुहने की बेला तक रहता है)। क्रोशमास्ते (कोस भर में रहता है) (क्रोशं मार्ग व्यञ्जक है)।

अभिनिविशश्च ।१।४।४७।

'अभि' तथा 'नि' उपसर्ग जब एक साथ 'विश्' धातु के पहले आते हैं तब 'विश्' का आधार कर्म कारक होता है, जैसे—सन्मार्गम् अभिनिविशते (वह अच्छे मार्ग का अनुसरण करता है)। यदि अभि+नि एक साथ न आकर इनमें से केवल एक ही आवे तो द्वितीया नहीं होती है, जैसे—निविशते यदि शूकशिखापदे।

उपान्वध्याङ्वसः ।१।४।४८।

यदि 'वस्' धातु के पूर्व उप, अनु, अधि, आ में से कोई उपसर्ग लगा हो तो क्रिया का आधार कर्म होता है, यथा—

विष्णुः वैकुण्ठम् अधिवसति
विष्णुः वैकुण्ठम् उपवसति
विष्णुः वैकुण्ठम् आवसति
विष्णुः वैकुण्ठम् अनुवसति

(विष्णु वैकुण्ठ में वास करते हैं)।

किन्तु विष्णुः वैकुण्ठे वसति—यहाँ पर द्वितीया विभक्ति नहीं हुई।

(अभुक्त्यर्थस्य न वा) जब 'उपवस्' का अर्थ उपवास करना, न खाना होता है तब 'उपवस्' का आधार कर्म नहीं होता अधिकरण ही रहता है। जैसे—वने उपवसति (वन में उपवास करता है)।

धातोरर्थान्तरे वृत्तेर्धात्वर्थेनोपसंग्रहात्।
प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिका क्रिया॥

सकर्मक धातुएँ भी अकर्मक हो जाती हैं, यदि—

(क) धातु का अर्थ बदल जाय, यथा—वह् 'धातु' का अर्थ है ढोना, ले जाना। नदी वहति इस प्रयोग मे 'वह्' का अर्थ स्पन्दन करना है।

(ख) धातु के ही अर्थ में कर्म समाविष्ट हो, जैसे—'जीवति' इस प्रयोग में 'जीवनं जीवति' इस प्रकार का अर्थ गम्य होने के कारण इसमें जीवन की कर्मता छिपी हुई है।

(ग) जब 'धातु' का कर्म अत्यन्त प्रख्यात हो, जैसे—'मेघो वर्षति' का कर्म 'जलम्' अत्यंत लोक विख्यात है।

(घ) जब कर्म का कथन अभीष्ट न हो, जैसे—'हितान्न यः संशृणुते स किं प्रभुः' इस प्रयोग में 'हित' कर्म है पर उसे कर्म बतलाना वक्ता को अभीष्ट नहीं है।

(ङ) अकर्मक धातुएँ सोपसर्ग होने पर प्रायः सकर्मक हो जाती हैं, यथा—ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमार्थोऽनुधावति (धाव् क्रिया पर अनु उपसर्ग)। प्रभुचित्तमेव जनोऽनुवर्तते (वृत् धातु पर अनु उपसर्ग)। अचलतुङ्गशिखरमारुरोह (रुह् धातु पर आ उपसर्ग)। ऊपर के प्रथम उदाहरण में धाव् धातु अकर्मक है, किन्तु अनु उपसर्ग लगने से वह सकर्मक हो गयी और वाचम् अनुधाव् क्रिया का कर्म हुआ।

७—दूरान्तिकार्थैभ्यो द्वितीया च ।२।३।३५।

दूर, अन्तिक (निकट) तथा इनके समानार्थक शब्दों में द्वितीया, तृतीया, पंचमी तथा सप्तमी विभक्तियाँ होती है, यथा—गृहस्य, गृहात् वा अन्तिकम्, अन्तिकेन, अन्तिकात्, अन्तिके वा। (गृहस्य निकटम् उद्यानं वर्तते।)

८—अनुर्लक्षणे ।१।४।८४। तृतीयार्थे ।१।४।८५। हीने।१।४।८६।

विशेष हेतु को लक्षित करने के लिए जब 'अनु' का प्रयोग होता है तब यह प्रवचनीय बन जाता है, यथा—'जपमनु प्रावर्षत्' अर्थात् जप समाप्त होते ही वृष्टि हो गयी। यहाँ जप ही वृष्टि का कारण हुआ।

'अनु' से तृतीया होने पर उसकी प्रवचनीय संज्ञा होती है, यथा—'नदीम् अन्वसिता सेना' (नद्या सह सम्बद्धा)।

'अनु' से हीन अर्थ लक्षित होने पर वह प्रवचनीय कहलाता है, यथा—'अनु हरिं सुराः' देवता हरि के बाद ही आते हैं अर्थात् हरि से कुछ नीचे हो हैं।

उपोऽधिके च ।१।४।८७।

'अधिक' तथा 'हीन' अर्थ का वाचक होने पर 'उप' भी प्रवचनीय कहलाता है, किन्तु हीन का अर्थ लक्षित होने पर द्वितीया होती है, अन्यथा सप्तमी होती है, यथा-'उप हरिं सुराः' अर्थात् देवता हरि से कुछ नीचे पड़ते हैं, अधिक अर्थ में "उपपरार्धे हरेर्गुणाः' अर्थात् परार्ध से अधिक (ऊपर) ही हरि के गुण होंगे।' 'उप परार्धम्' ऐसा प्रयोग नहीं होगा।

लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः ।१।४।९०।

जब किसी ओर संकेत करना हो, या जब 'ये इस प्रकार के हैं' ऐसा बतलाना हो या 'यह उनके हिस्से में पड़ता है' या पुनरुक्ति बतलानी हो तब प्रति, परि और अनु प्रवचनीय कहलाते हैं और इनके योग में द्वितीया विभक्ति होती है, यथा—

प्रासादं प्रति विद्योतते विद्युत् (बिजली महल पर चमक रही है)
भक्तो हरिं प्रति पर्यनु वा (हरि के ये भक्त हैं)।
लक्ष्मीः हरिं प्रति (लक्ष्मी विष्णु के हिस्से पड़ी)।
लतां लतां प्रति सिंचति (प्रत्येक लता को सींचता है)।